**2. पश्चिमी भारतीय शैली (बारहवीं से सोलहवीं शताब्दी)**

सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से संबंधित चित्रकला के सर्वोत्तम उदाहरणों का प्रतिनिधित्व लघु चित्रकला के एक समूह द्वारा किया जाता है जिसे सामान्यत: **‘कुल्हाकदार समूह’** कहते हैं ।

इस समूह में ‘चौरपंचाशिका’-‘बिल्हण द्वारा चोर की पन्द्रह पंक्तियां,

गीत गोविन्द,

‘भागवत’ पुराण और

‘रागमाला’ के सचित्र उदाहरण शामिल हैं ।

इन लघु चित्रकलाओं की शैली की विशेषता चटकीले विषम वर्णों, प्रभावशाली और कोणीय आरेखण, पारदर्शी वस्त्रों का प्रयोग करना तथा ऐसी शंकुरूप टोपियां **‘कुलहा’** का प्रकट होना है जिन पर पुरुष आकृतियां पगडियां पहनती है ।

**2. मुगल शैली (1560-1800 ईसवी सन्)**

चित्रकला की मुगलशैली की शुरुआत को भारत में चित्रकला के इतिहास की एक युगान्तरकारी घटना समझा जाता है । मुगल साम्राज्य की स्थापना हो जाने के पश्चात् चित्रकला की मुगल शैली की शुरुआत सम्राट अकबर के शासनकाल में 1560 ईसवी सन् में हुआ था । सम्राट अकबर को चित्रकला और वास्तुकला में अत्यधि‍क रुचि थी । जब वे एक बालक थे तब उन्होंने चित्रकला में शिक्षा ली थी । उनके शासन के प्रारम्भ में दो फारसी अध्यापकों मीर सयद अली और अब्दुतल समद खान की देखरेख में एक शिल्पशाला की स्थापना की गई थी, जिन्हें मूल रूप से सम्राट अकबर के पिता हुमायूं ने नौकरी दी थी । समूचे भारत में बड़ी संख्या में भारतीय कलाकारों को फारसी उस्तादों के अधीन काम पर रखा गया था ।

मुगल शैली का विकास चित्रकला की स्वदेशी भारतीय शैली और फारसी चित्रकला की सफाविद शैली के एक उचित संश्लेषण के परिणामस्वरूप हुआ था । प्रकृति के घनिष्ठ अवलोकन और उत्तम तथा कोमल आरेखण पर आधारित सुनम्य प्रकृतिवाद, मुगल शैली की एक विशेषता है । यह सौन्दर्य के उच्च गुणों से परिपूर्ण है तथा प्राथमिक रूप से वैभवशाली और निरपेक्ष है ।

क्लीवलैण्ड कला संग्रहालय (यू एस ए) में तूती-नामा की एक सचित्र पाण्डुलिपि मुगल शैली की प्रथम कलाकृति प्रतीत होती है । इस चित्रकला की शैली में मुगल शैली अपने विकास-काल में दिखाई देती है ।

इसके शीघ्र पश्चात 1564-69 ईसवी सन् के बीच हमज़ानामा के रूप में एक अति महत्वाकांक्षी परियोजना पूरी की गई थी जिसमें कपड़े पर सत्रह खण्डों में मूल रूप से 1400 पृष्ठ शामिल हैं, प्रत्येक पृष्ठ का आकार लगभग 27”X20” है । हमज़ानामा की शैली तूती-नामा की अपेक्षा अधिक विकसित और परिष्कृत है ।

हमज़ानामा के सचित्र उदाहरण स्विटजरलैण्ड के एक निजी संग्रह में हैं । ये एक मण्डप की ऊपरी मंजिल से एक बहुतलीय मीनार पर एक पक्षी के मिह्रदुख़त आखेट बाणों के साथ दिखाते हैं । इस लघु चित्रकला में हम यह देख सकते हैं कि वास्तुकला भारतीय फारसी है, वृक्षों की किस्मों को प्रमुख रूप से दक्कनी चित्रकला से लिया गया है और महिला आकृतियों का अनुकूलन राजस्थान की प्राचीन चित्रकला से किया गया है । महिलाओं ने चार कानों वाले नोकदार लहंगे तथा पारदर्शी मुस्लिम बुर्के पहने हुए हैं । पुरुषों ने जो पगडि़यां पहनी हुई हैं, वे छोटी तथा कसी हुई हैं और अकबर युग की प्रारूपी हैं । आगे चल कर मुगल शैली मुगल राजदरबारों में आने वाली यूरोपियाई चित्रकला से प्रभावित हुई और इसमें छायाकरण और परिप्रेक्ष्य जैसी पश्चिमी तकनीकों में से कुछ को आत्मसात किया गया ।

जयपुर महाराजा संग्रहालय - जयपुर के रज़मनामा (महाभारत का फारसी अनुवाद)

अकबर के राजदरबार के चित्रकारों की एक सूची में बड़ी संख्या में नाम शामिल हैं । पहले जिन दो फारसी चित्रकारों का उल्लेख किया गया है उन्हें छोड़कर प्रसिद्ध चित्रकारों में से कुछ हैं - दसवंत मिसकिना, नन्हा , कन्हा , बासवान, मनोहर, दौलत, मंसूर, केसू, भीम गुजराती, धर्मदास, मधु, सूरदास, लाल, शंकर गोवर्धन और इनायत ।

जहांगीर के अधीन चित्रकला ने अधिका‍धिक आकर्षण, परिष्कार और गरिमा प्राप्त की । उन्हें प्रकृति के प्रति अधिक आकर्षण था और उन्हें पक्षियों, पशुओं तथा पुष्पों को चित्रित करने में प्रसन्नता होती थी । इनके युग में सचित्र उदाहरण देकर स्पष्‍ट की गई कुछ महत्‍त्वपूर्ण पाण्डुलिपियां हैं- **अयार-ए-दानिश** नामक पशुओं के किस्से-कहानियों की एक पुस्तक,

जिसके पन्नों का संग्रह कोवासजी जहांगीर संग्रह, मुम्बई और चेस्टनर बिट्टी पुस्तकालय, डबलिन में हैं,

और अनवर-ऐ-सुनावली, ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में किस्से-कहानी की एक अन्य पुस्तक है ।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रामायण की एक शृंखला की प्रतीकात्मक लोकप्रिय मुगल शैली में एक उदाहरण राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में है । इसमें लंका में राम और रावण के सैनिकों के बीच लड़ाई को दिखाया गया है । राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ अग्रभाग में बाईं ओर दिखाई दे रहे हैं जबकि रावण अपने राजमहल में दानव प्रमुखों के साथ सुनहरे किले में विचार-विमर्श करते हुए दिखाई दे रहा है । आरेखण अच्छा है लेकिन उतना परिष्कृत नहीं है जैसा राजसी मुगल चित्रकला में देखने को मिलता है । मानव मुखाकृति, दानव, वृक्ष और शैलों की अभिक्रिया सभी मुगल अन्दाज के हैं । इस लघु चित्रकला की विशेषता युद्ध के दृश्यों में सृजित कार्रवाई की भावना और नाटकीय संचलन है,

**तंजावुर**

अठारहवीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, चित्रकला की एक शैली की विशेषताएं सुदृढ़ आरेखण, छायाकरण की तकनीकें और अभिवृद्धि तथा चटकीले वर्णों का प्रयोग करना थीं, जिसने दक्षिण भारत के तंजावुर में उन्नति की ।
राष्ट्रीय संग्रहालय के संग्रह मे तंजावुर चित्रकला का एक प्रतीकात्मक उदाहरण उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ का एक सचित्र काष्ठ फलक है जिस पर राम के राज्याभिषेक को दर्शाया गया है । इस दृश्य को व्यापक रूप से सुसज्जित मेहराबों के नीचे मूर्त रूप दिया गया है । राजसिंहासन पर मध्य में राम और सीता बैठे हुए हैं, राम के अनुज और एक महिला उनकी देखभाल कर रहे हैं । बाएं और दाहिने पैनलों पर ऋषि, राजदरबारी और राजकुमार दिखाई दे रहे हैं । अग्रभाग में हनुमान, सुग्रीव हैं जिन्हें सम्मानित किया जा रहा है तथा दो अन्य वानर एक बक्से को खोल रहे हैं जिसमें संभवत: उपहार हैं । इसकी शैली सजावटी है और चटकीलें रंगों का प्रयोग तथा अलंकरी साजो सामान इसकी विशेषताएं हैं । लघु चित्रकला में जो शंकुरूप मुकुट दिखाई दे रहा है, वह तंजौर चित्रकला की एक प्रतीकात्मक विशेषता है।

**मध्य भारत और राजस्थानी शैली (सत्रह से उन्नीसवीं शताब्दियां)**

प्राथमिक रूप से पंथ-निरपेक्ष मुगल चित्रकला से भिन्न, मध्य भारत, राजस्थानी और पहाड़ी क्षेत्र आदि की चित्रकला की जड़ें भारतीय परम्पराओं में गहरी जमी हुई हैं तथा इसे भारतीय महाकाव्यों, पुराणों जैसे धार्मिक ग्रंथों, संस्कृत और अन्‍य भारतीय भाषाओं में प्रेम भरी कविताओं, भारतीय लोक-विद्या एवं संगीत से जुड़े विषयों के बारे में कृतियों से प्रेरणा मिली है ।

वैष्ण व, शैव और शक्ति के सम्प्रदायों ने इन स्थानों की चित्रकला पर अत्यधिक प्रभाव डाला हैं । इन सम्प्रदायों में से कृष्ण सम्प्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय था जिसने संरक्षकों और कलाकारों को प्रेरित किया। रामायण, महाभारत, भागवत, शिव पुराण, उषा अनिरुद्ध, जयदेव का गीत गोविन्दक, भानुदत्ता की रसमंजरी, अमरू शतक, केशवदास की रसिकप्रिया, बिहारी सतसई और रागमाला, आदि के विषयों ने चित्रकार को एक अति समृद्ध क्षेत्र उपलब्ध कराया। इस कलाकार ने भारतीय चित्रकला में अपनी कलात्मक कुशलता और समर्पण से महत्‍त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

**सोलहवीं शताब्दी में मध्य भारत और राजस्था‍न में पश्चिमी भारत और चौरपंचाशिका शैलियों के रूप में आदिम कला की परम्पराएं पहले से ही विद्यमान थीं, जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दी के दौरान चित्रकला की विभिन्न शैलियों के उद्गम तथा संवृद्धि के लिए एक आधार के रूप में कार्य किया है ।**

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान राजस्थान में शान्तिपूर्ण स्थिति थी । राजपूत शासकों ने धीरे-धीरे मुगलों के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था और उनमें से कुछ ने मुगल राजदरबार में महत्‍त्वपूर्ण पदों पर कब्जा कर लिया था । कुछ शासकों ने मुगलों के साथ वैवाहिक संबंध भी बना लिए थे । मुगल सम्राटों द्वारा स्थापित उदाहरण का अनुकरण करते हुए कुछ राजपूत शासकों ने कलाकारों को अपने राजदरबारों में नियोजित भी कर दिया था । कम योग्यता वाले ऐसे कुछ मुगल कलाकार जिनकी अब मुगल सम्राटों को कोई आवश्यकता नहीं थी, राजस्थान और अन्य स्थानों पर चले गए थे तथा उन्‍हें स्थानीय राजदरबारों में रोजगार मिल गया था । यह माना जाता है कि मुगल शैली के लोकप्रिय रूपान्तर, जिसे ये चित्रकार विभिन्न स्थानों पर ले गए थे, ने वहां चित्रकला की पहले से विद्यमान शैलियों को प्रभावित किया जिसके परिणामस्वरूप सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में राजस्थान तथा मध्य भारत में चित्रकला की अनेक नई शैलियों का उद्भव हुआ था । इनमें से चित्रकला के महत्‍त्वपूर्ण विद्यालय मालवा, मेवाड़, बूंदी-कोटा, आमेर जयपुर, बीकानेर, मारवाड़ और किशनगढ़ में थे ।

मालवा सहित चित्रकला की राजस्थानी शैली की विशेषताएं मजबूत एवं प्रभावशाली आरेखण और विषम वर्ण हैं । परिप्रेक्ष्य को एक प्राकृतिक दृष्टि से दिखाने के लिए कोई प्रयास किए बिना ही आकृतियों की अभिक्रिया चौरस है । कभी-कभी चित्रकला की सतह को अलग-अलग वर्णों के अनेक उप-खण्डों में विभाजित कर दिया जाता है ताकि एक दृश्य को अन्य दृश्य से पृथक किया जा सके । आरेखण के परिष्कोरण में मुगल प्रभाव दिखाई देता है और आकृतियों तथा वृक्षों में प्रकृतिवाद के कुछ तत्‍त्वों को डाला गया है । चित्रकला के प्रत्येक विद्यालय की अपनी विशिष्ट किस्म, परिधान, भूदृश्यांकन और वर्ण योजना होती है ।

**1. मालवा**

मालवा शैली में निष्पादित की गई कुछ महत्‍त्वपूर्ण चित्रकलाएं हैं- 1634 ईसवी सन् की रसिकप्रिया की एक शृंखला, 1652 ईसवी सन् में नसरतगढ़ नायक एक स्थान पर चित्रित की गई, **अमरू शतक की एक शृंखला और 1680 ईसवी सन् में माधो दास नामक एक कलाकार द्वारा नरसिंह शाह में चित्रित की गई रागमाला की एक शृंखला । इनमें से कुछ राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में उपलब्ध हैं । इसी समय की एक अन्य अमरू-शतक प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय, मुम्बई में और 1650 ईसवी सन् की एक रागमाला शृंखला भारत कला भवन, बनारस में उपलब्ध है ।**

**2. मेवाड़**

मेवाड़ चित्रकला का प्रारम्भिक उदाहरण 1605 ईसवीं सन् में मिसर्दी द्वारा उदयपुर के निकट एक छोटे से स्थान चावंद में चित्रित की गई रागमाला की एक शृंखला है । इस शृंखला की अधिकांश चित्रकलाएं श्री गोपी कृष्ण कनोडि़या के संग्रह में हैं । रंगमाला की एक अन्य शृंखला को साहिलदीन ने 1628 ईसवीं सन् में चित्रित किया था । इस शृंखला की कुछ चित्रकलाएं जो पहले खंजाची संग्रह के पास थी जो अब राष्टीय संग्रहालय, नई दिल्ली में हैं ।

**मेवाड़ चित्रकला के अन्य उदाहरण हैं- 1651 ईसवी सन् की रामायण की तृतीय पुस्तक (अरण्य काण्ड) का सचित्र उदाहरण जो सरस्वती भण्डार, उदयपुर में हैं, 1653 ईसवी सन् की रामायण की सातवीं पुस्तक (उत्त‍र काण्ड) जो ब्रिटिश संग्रहालय, लन्द‍न में है** और लगभग इसी समय की रागमाला चित्रकला की एक शृंखला राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में है ।

1628 ईसवी सन् में साहिबदीन द्वारा चित्रित की गई रागमाला शृंखला का एक उदाहरण अब राष्ट्रीय संग्रहालय में है जो ललित रागिनी को दर्शानेवाली एक चित्रकला है । नायिका एक ऐसे मण्डप के नीचे एक बिस्तर पर लेटी हुई है तथा उसकी आंखें बन्द हैं जिसमें एक द्वार भी है । एक दासी उसके चरण दबा रही है । नायक बाहर खड़ा है, उसके हाथ में एक पुष्पमाला है । अग्रभाग में एक सज्जित अश्व है और दूल्हा मण्डप की सीढियों के निकट बैठा हुआ है । आरेखण मोटा है और वर्ण चमकीले तथा विषम हैं । चित्रकला का आलेख पीत भूमि पर सबसे ऊपर श्याम रंग से लिखा गया है ।

**3. बूँदी**

चित्रकला की बूँदी शैली मेवाड़ के अति निकट है लेकिन बूँदी शैली गुणवत्ता में मेवाड़ शैली से आगे है । बूँदी में चित्रकला लगभग 1625 ईसवीं सन् में प्रारम्भ हो गई थी । भैरवी रागिनी को दर्शाते हुए एक चित्रकला इलाहाबाद संग्रहालय में हैं जो बूँदी चित्रकला का एक प्रारंभिक उदाहरण है । इसके कुछ उदाहरण हैं- **कोटा संग्रहालय में भागवत पुराण की एक सचित्र पाण्डुलिपि** और राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में रसिकप्रिया की एक शृंखला ।
सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में रसिकप्रिया की एक शृंखला में एक दृश्य है जिसमें कृष्ण एक गोपी से मक्खन लेने का प्रयास कर रहा है लेकिन जब उसे यह पता चलता है कि पात्र में एक वस्त्र का टुकड़ा और कुछ अन्य वस्तुएं हैं लेकिन मक्खन नहीं है तो वह यह समझ जाता है कि गोपी ने उससे छल किया है । पृष्ठभूमि में वृक्ष और अग्रभाग में एक नदी है जिसे तरंगी रेखाओं द्वारा चित्रित किया गया है, नदी में फूल और जलीय पक्षी दिखाई दे रहे हैं । इस चित्रकला का चमकीले लाल रंग का एक किनारा है, जैसा कि इस लघु चित्रकला से स्पष्ट होता है बूँदी चित्रकला के विशेष गुण भड़कीले तथा चमकीले वर्ण, सुनहरे रंग में उगता हुआ सूरज, किरमिजी-लाल रंग का क्षितिज, घने और अर्द्ध-प्रकृतिवादी वृक्ष हैं । चेहरों के परिष्कृत आरेखण में मुगल प्रमाण और वृक्षों की अभिक्रिया में प्रकृतिवाद का एक तत्‍त्व दृष्टिगोचर है । आलेख पीत भूमि पर सबसे ऊपर श्याम रंग से लिखा गया है ।

**पहाड़ी शैली (सत्रह से उन्नीसवीं शताब्दी)**

पहाड़ी क्षेत्र में वर्तमान हिमाचल प्रदेश राज्य , पंजाब के कुछ निकटवर्ती क्षेत्र, जम्मू और कश्मीर राज्य में जम्मू क्षेत्र और उत्तर प्रदेश में गढ़वाल शामिल हैं। इस समूचे क्षेत्र को छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित किया गया था तथा राजपूत राजकुमारों का इन पर शासन था जो प्राय: कल्याणकारी कार्यों में व्यस्त रहते थे । सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक ये राज्य महान कलात्मक क्रियाकलापों के केन्द्र थे ।

**1. बशोली**

पहाड़ी क्षेत्र में चित्रकला का प्रारम्भिक केन्द्र बशोली था जहां राजा कृपाल पाल के संरक्षणाधीन एक कलाकार जिसे देवीदास नाम दिया गया था, 1694 ईंसवी सन् में रसमंजरी चित्रों के रूप में लघु चित्रकला का निष्पादन किया था । रसमंजरी लघु चित्रकलाओं की एक अन्य शृंखला है जिसे समान शैली में और लगभग समान अवधि में तैयार किया गया था लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा किसी अन्य व्यक्ति ने किया था । रसमंजरी की दो शृंखलाओं के सचित्र उदाहरण भारत और विदेशों के अनेक संग्रहालयों में बिखरे पड़े हैं । चित्रकला की बशोली शैली की विशेषता प्रभावशाली तथा सुस्पष्ट रेखा और प्रभावशाली चमकीले वर्ण हैं । बशोली शैली विभिन्न पड़ोसी राज्यों तक फैली और अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक जारी रही ।

**1730 ईसवी सन् में कलाकार मनकू द्वारा चित्रित की गईं गीतगोविन्द की एक शृंखला का एक सचित्र उदाहरण बशोली शैली के आगे विकास को दर्शाता है । यह चित्रकला राष्ट्रीय संग्रहालय के संग्रह में उपलब्ध है और एक नदी के किनारे पर एक उपवन में कृष्ण को गोपियों के साथ चित्रित करती है ।**

मुखाकृति शैली में एक परिवर्तन आया है जो कुछ भारी हो गया है । साथ ही वृक्षों के रूपों में भी परिवर्तन आया है जिसमें कुछ-कुछ प्राकृतिक विशेषता को अपना लिया है । ऐसा मुगल चित्रकला के प्रभाव के कारण हो सकता है । बशोली शैली के प्रभावशाली तथा विषम वर्णों के प्रयोग, एकवर्णीय पृष्ठभूमि, बड़ी-बड़ी आंखें, मोटा व ठोस आरेखण, आभूषणों में हीरों को दिखाने के लिए बाहर निकले हुए पंखों के प्रयोग, तंग आकाश और लाल किनारा जैसी सामान्य विशेषताएं इस लघु चित्रकला में भी देखी जा सकती हैं ।

**2. गुलेर**

बशोली शैली के अन्तिम चरण के पश्चात चित्रकलाओं के जम्मू समूह का उद्भव हुआ जिसमें मूल रूप से गुलेर से संबंध रखने वाले और जसरोटा में बस जाने वाले एक कलाकार नैनसुख द्वारा जसरोटा (जम्मू् के निकट एक छोटा स्थान) के राजा बलवन्त सिंह की प्रतिकृतियां शामिल हैं । उसने जसरोटा और गुलेर दोनों स्थानों पर कार्य किया । ये चित्रकलाएं नई प्राकृतिक तथा कोमल शैली में हैं जो बोसोहली कला की प्रारम्भिक परम्पगराओं में एक परिवर्तन का द्योतक है । प्रयुक्त वर्ण कोमल तथा शीतल हैं । ऐसा प्रतीत होता कि यह शैली मोहम्मद शाह के समय की मुगल चित्रकला की प्राकृतिक शैली से प्रभावित हुई है ।

पहाड़ी क्षेत्र के एक अन्‍य राज्य में गुलेर में लगभग 1750 ईसवीं सन् में जसरोट के बलवन्त सिंह की प्रतिकृति से घनिष्ठ संबंध रखने वाली एक शैली में गुलेर के राजा गोवर्धन चन्द की अनेक प्रतिकृतियों का निष्पा‍दन किया गया था । इन्हें कोमलता से बनाया गया है और ये चमकीली तथा भड़कीली रंगपट्टी से युक्त है ।

**पहाड़ी क्षेत्र में सृजित लघु चित्रकलाओं का सर्वोत्तम समूह भागवत की सुप्रसिद्ध शृंखला, गीत गोविन्द, बिहारी सतसई, बारहमासा और 1760-70 ईसवी सन् में चित्रित की गई रंगमाला का प्रतिनिधित्व करती हैं । चित्रकला की इन शृंखलाओं के उद्गम का ठीक-ठीक स्थान ज्ञात नहीं है । इन्हें या तो गुलेर या कांगड़ा में या फिर किसी अन्य निकटवर्ती स्थान पर चित्रित किया गया होगा । भागवत और अन्य शृंखलाओं सहित गुलेर प्रतिकृतियों को गुलेर प्रतिकृतियों की शैली के आधार पर गुलेर शैली नाम के एक सामान्य शीर्षक के अन्त‍र्गत समूहबद्ध किया गया है । इन चित्रकलाओं की शैली प्रकृतिवादी, सुकोमल और गीतात्मक है । इन चित्रकलाओं में महिला आकृति विशेष रूप से सुकोमल है जिसमें सुप्रतिरूपित चेहरे, छोटी और उल्टी नाक है और बालों को सूक्ष्मरूप से बांधा गया है । इस बात की पूरी-पूरी संभावना है कि इन चित्रकलाओं को उस्ताद-कलाकार नैनसुख ने स्वयं या फिर उसके कुशल सहयोगी ने निष्पादित किया होगा ।**

**3. कांगड़ा**

गुलेर शैली के पश्चात् ‘कांगड़ा शैली’ नामक एक चित्रकला की एक अन्य शैली का उद्गम अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में हुआ जो पहाड़ी चित्रकला के तृतीय चरण का प्रतिनिधित्व करती है । कांगड़ा शैली का विकास गुलेर शैली से हुआ । इसमें गुलेर शैली की आरेखण में कोमलता और प्रकृतिवाद की गुणवत्ता जैसी प्रमुख विशेषताएं निहित हैं । चित्रकला के इस समूह को कांगड़ा शैली का नाम इसलिए दिया गया क्योंकि ये कांगड़ा के राजा संसार चन्द की प्रतिकृति की शैली के समान है । इन चित्रकलाओं में, पार्श्विका में महिलाओं के चेहरों पर नाक लगभग माथे की सीध में हैं, नेत्र लम्बे तथा तिरछे हैं और ठुड्डी नुकीली है, तथापि, आकृतियों का कोई प्रतिरूपण नही है और बालों को एक सपाट समूह माना गया है, कांगड़ा शैली कांगड़ा, गुलेर, बशोली, चम्बा, जम्मू , नूरपुर, गढ़वाल, आदि विभिन्न स्थानों पर उन्नति करती रही । कांगड़ा शैली की चित्रकलाओं का श्रेय मुख्य रूप से नैनसुख परिवार को जाता है । कुछ पहाड़ी चित्रकारों को पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिख अभिजात वर्ग का संरक्षण मिला था तथा कांगड़ा शैली के आशोधित रूप में प्रतिकृतियों और एवं अन्य लघु चित्रकलाओं का निष्पादन किया था जो उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जारी रहा ।

**ओडि़शा**

ओडिशा में लघु चित्रकला के प्रारम्भिक जीवित उदाहरणों का सत्रहवीं शताब्दी ईसवी सन् से संबंध प्रतीत होता है । इस समय की चित्रकलाओं के कुछ अच्छे उदाहरण हैं- आशुतोष संग्रहालय में एक राजदरबार का दृश्य और **गीत गोविन्द की पाण्डुलिपि** के सचित्र उदाहरण के चार पत्रक और राष्ट्रीय संग्रहालय में रामायण की ताड़-पत्ते पर एक सचित्र पाण्डुलिपि और राष्ट्रीय संग्रहालय में गीत गोविन्द की कागज पर एक पाण्डुलिपि, ओडिशी चित्रकला के अठारहवीं शताब्दी‍ के उदाहरण हैं । ओडिशा में ताड़ के पत्ते का प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी तक होता रहा था । बहिर्रेखा के आरेखण को ताड़ के पत्ते पर एक सुई से चित्रित किया गया और फिर चित्र पर काठ कोयला या स्याही को रगड़ कर चित्र को उभारा गया । अभिकल्पों को भरने के लिए कुछ रंगों का प्रयोग किया गया था तथापि कागज पर चित्रकला करने की यह तकनीक भिन्न थी पर चित्रकला के अन्य विद्यालयों द्वारा प्रयुक्त तकनीक के समान थी । प्रारम्भिक पाण्डुलिपियां आरेखण में स्वच्छता को दर्शाती हैं । बाद में अठारहवीं शताब्दी में यह रेखा मोटी और कच्ची हो जाती है लेकिन शैली सामान्य रूप से अति सजावटी तथा अलंकारी हो जाती है ।
राष्ट्रीय संग्रहालय के संग्रह में लगभग 1800 ईसवी सन् की गीत गोविन्द की एक शृंखला में एक सचित्र उदाहरण राधा और कृष्ण‍ को चित्रित करता है । वे एक लाल पृष्ठभूमि में एक कमजोर वृक्ष की इकहरी शाखाओं के नीचे आमने-सामने खड़े हैं । शैली अति अलंकृत है और सुदृढ़ आरेखण, वृक्ष का रूढ़ अंकन, आकृतियों का भारी अलंकरण और खूबसूरत चमकीली रंग योजनाओं का प्रयोग करना इसकी विशेषताएं हैं । संस्कृत लेख सबसे ऊपर है ।